शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 02 अंक– 07 जुलाई - सितम्बर -2024 Impact factor– 03

ओमप्रकाश की 'जूठन': दलित अनुभव की लेखनी से उपजा सत्य

सुमन बारला
डॉ. महेन्द्र कुमार वर्मा

'जूठन' हिन्दी दलित साहित्य की एक अत्यंत महत्वपूर्ण आत्मकथा है, जिसके रचयिता ओमप्रकाश वाल्मीकि हैं। उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं—कविता, कहानी, नाटक और आत्मकथा—में सक्रिय लेखन किया है। वाल्मीकि केवल एक संवेदनशील रचनाकार ही नहीं, बल्कि एक सजग सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं, जिनका संपूर्ण जीवन दलित समुदाय के संघर्षों और आकांक्षाओं का जीवंत प्रतीक है। 'जूठन' उनके उसी कर्मठ और जागरूक व्यक्तित्व के निर्माण और विकास की दास्तान है, जो गहरे सामाजिक असमानताओं से जूझते हुए उभरकर सामने आती है। यह आत्मकथा उस सामाजिक यथार्थ को उजागर करती है, जिसमें एक दलित बालक—'चूहड़ा' जाति से आने वाला—सवर्ण समाज के अपमान, तिरस्कार और उत्पीड़न का सामना करता है, किंतु हार नहीं मानता। तमाम बाधाओं को पार करते हुए वह अपने आत्मबल और विचारशीलता से दलित आंदोलन का एक क्रांतिकारी प्रतिनिधि बनकर उभरता है। 'जूठन' लेखक के जीवन के उन शुरुआती पैंतीस वर्षों (1950–1985) का दस्तावेज़ है, जिसमें उन्होंने जातीय शोषण, सामाजिक उपेक्षा और अपमान की अंधी गलियों से निकलकर सृजन और प्रतिरोध की मशाल जलाई। यह कृति केवल व्यक्तिगत जीवन की कथा नहीं है, बल्कि यह पारंपरिक ब्राह्मणवादी मूल्यों को चुनौती देती है और नए समतामूलक सामाजिक-साहित्यिक दृष्टिकोण की नींव रखती है। 'जूठन' न तो आत्मसंतोष के लिए लिखी गई है, न ही भावुक कर देने वाला साहित्य है। लेखक स्वयं स्वीकार करते हैं कि इसे लिखते समय उन्हें अपने जीवन की पीड़ाओं और अपमानजनक अनुभवों को फिर से जीना पड़ा, और यह प्रक्रिया अत्यंत मानसिक यंत्रणा से भरी हुई थी। उनके शब्दों में- ***"तमाम कष्टों, यातनाओं, उपेक्षाओं, प्रताड़नाओं को एक बार फिर जीना पड़ा... स्वयं को परत-दर-परत उधेड़ते हुए कई बार लगा—कितना दुःखदायी है यह सब।"***[1] 'जूठन' पाठक को केवल भावनात्मक नहीं बनाती, बल्कि उसे उस सड़े-गले सामाजिक ढांचे को तोड़ने की प्रेरणा देती है, जो सदियों से उत्पीड़न का वाहक रहा है। यह आत्मकथा मुक्तिकामी समाज के निर्माण हेतु संघर्षशील पाठकों के हाथों में एक हथियार थमा देती है। साहित्यिक दृष्टि से यह आत्मकथा एक नए समाजशास्त्र की ज़रूरत को रेखांकित करती है, जिसमें दलितों की दृष्टि से समाज की समीक्षा और पुनर्संरचना हो सके। लेखक यह स्पष्ट करते हैं कि- ***"भारतीय समाज में 'जाति' एक महत्त्वपूर्ण घटक है। 'जाति' पैदा होते ही व्यक्ति की नियति तय कर देती है।"***[2] भारतीय समाज की वर्ण-व्यवस्था ने दलितों को सदियों तक शिक्षा और समान अधिकारों से वंचित रखा। सवर्ण समाज ने जानबूझकर दलितों को अशिक्षित बनाए रखने की साजिश रची ताकि वे अपने अधिकारों के लिए खड़े न हो सकें। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' इसी जातिगत शोषण की मार्मिक गवाही है। वाल्मीकि बचपन में जब स्कूल गए तो उन्हें केवल सहपाठियों से ही नहीं, बल्कि शिक्षकों से भी तिरस्कार और हिंसा का सामना करना पड़ा। प्यास लगने पर हैंडपंप छूना अपराध मान लिया गया। दलित होने के कारण उन्हें मारा-पीटा गया, गालियाँ दी गईं, और शिक्षा से वंचित करने के लिए मानसिक व शारीरिक उत्पीड़न झेलना पड़ा। सवर्णों की दृष्टि में एक 'चूहड़ा' बच्चे का पढ़ना अनुचित और अस्वीकार्य था। उनका उद्देश्य था कि वह पढ़ाई छोड़कर वही काम करे जिसे पारंपरिक रूप से उसकी जाति के लिए तय किया गया था—जैसे सफाई का कार्य। यह व्यवहार केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि पूरी सामाजिक सोच को दर्शाता है जो दलितों को हमेशा पिछड़ा बनाए रखना चाहती थी।

लेखक अपने बचपन के यातनाप्रद अनुभवों को कुछ इस तरह याद करते हैं, ''त्यागियों के बच्चे 'चूहड़े का' कहकर चिढ़ाते थे। कभी-कभी बिना कारण पिटाई भी कर देते थे। एक अजीब-सी यातनापूर्ण जिन्दगी थी, जिसने मुझे अन्तर्मुखी और चिड़चिड़ा, तुनकमिजाजी बना दिया था। स्कूल में प्यास लगे तो हैंडपंप के पास खड़े रहकर किसी के आने का इन्तजार करना पड़ता था। हैण्डपम्प छूने पर बवेला हो जाता था। लड़के तो पीटते ही थे। मास्टर लोग भी हैण्डपम्प छूने की सजा देते थे। तरह-तरह के हथकण्डे अपनाए जाते थे, ताकि मैं स्कूल छोड़कर भाग जाऊँ। मैं भी उन्हीं कामों में लग जाऊँ, जिनके लिए मेरा जन्म हुआ था। उनके अनुसार स्कूल आना मेरी अनाधिकार चेष्टा थी।''[3] वाल्मीकि का संघर्ष इस साजिश का प्रतिरोध है। त्यागी समाज के बच्चे उसे तिरस्कार और घृणा की दृष्टि से देखते थे, उसे चिढ़ाते और बिना किसी कारण के मारते-पीटते थे। इस प्रकार की हिंसा और सामाजिक तिरस्कार ने लेखक के मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला। वह अंतर्मुखी, चिड़चिड़ा और तुनकमिजाज होता गया। यह उसके नैसर्गिक विकास में बाधा का प्रतीक है। विद्यालय में सवर्ण अध्यापकों का व्यवहार भी समाज की जातिवादी मानसिकता से ग्रस्त था। वे शिक्षण की मर्यादाओं का पालन करने के बजाय दलित छात्रों के साथ घृणा और उपेक्षा का रवैया अपनाते थे। ओमप्रकाश वाल्मीकि के साथ भी ऐसा ही व्यवहार होता रहा। स्कूल में बात-बात पर अपमानजनक भाषा का प्रयोग होता-गालियाँ, तिरस्कार और मार-पीट आम बात थी। शिक्षक और छात्र, दोनों का संबोधन अमानवीय था- 'अबे चूहड़े के!' जैसी टिप्पणियाँ मानो उसकी पहचान बन गई थीं। शिक्षक उसे नीचा दिखाने के लिए बार-बार अपमानजनक और असंवेदनशील सवाल पूछते, जैसे- "सूअर की कितनी साँटें खा लीं? एक पाव तो खा ही लेते होंगे?"[4] । जब स्वयं शिक्षक ऐसा व्यवहार करते, तो छात्रों को भी उसे नीचा दिखाने और जातिसूचक टिप्पणियाँ करने का अवसर मिल जाता- "अबे चूहड़े के, सूअर खाता है!"5 यह व्यवहार यह दर्शाता है कि विद्यालय, जो कि शिक्षा और संस्कार का स्थान माना जाता है, दलित बच्चों के लिए अपमान और यातना का केंद्र बन गया था। अध्यापकों की भूमिका प्रेरणादायक बनने के बजाय जातिगत घृणा को पोषित करने वाली हो गई थी। इस प्रकार, शिक्षा का अधिकार दलितों के लिए न केवल दूर की चीज बन गया, बल्कि उनके आत्मसम्मान को भी लगातार कुचला गया। विद्यालय में ओमप्रकाश वाल्मीकि के साथ गहरा जातिगत भेदभाव किया जाता था। हेडमास्टर कलीराम तीन दिनों तक उनसे झाड़ू लगवाता रहा। जब उनके पिता ने इसका विरोध किया, तो उन्हें अपमानित कर गालियाँ दी गईं और ओमप्रकाश को स्कूल से बाहर कर दिया गया। एक अन्य अवसर पर, केवल सवाल पूछने पर एक अध्यापक ने इतनी बेरहमी से पीठ पर छड़ी चलाई कि लेखक ने उसे व्यंग्यपूर्वक "महाकाव्य" कहा। वे लिखते हैं- 'वह महाकाव्य आज भी मेरी पीठ पर अंकित है। भूख और असहाय जीवन के घृणित क्षणों में

सामंती सोच का यह महाकाव्य मेरी पीठ पर ही नहीं, मेरे मस्तिष्क के रेशे-रेशे पर अंकित है।''[6] यह अनुभव स्पष्ट करता है कि दलित छात्रों को शिक्षा के स्थान पर अपमान, हिंसा और मानसिक प्रताड़ना ही दी जाती थी। यह केवल शारीरिक उत्पीड़न नहीं था, बल्कि उनके मन-बुद्धि पर अमिट छाप छोड़ने वाली अमानवीय साजिश थी।लेखक के साथ-साथ कई अन्य दलित छात्र भी स्कूल में शिक्षकों की मार और अपमान का शिकार होते थे। ऐसे में यदि कोई 'आदर्श शिक्षक' की कल्पना करते हुए उन शिक्षकों को याद करे जो छात्रों के साथ गुंडों जैसा बर्ताव करते थे, तो यह आश्चर्य की बात नहीं होगी। ये शिक्षक न केवल गालियाँ देते थे, बल्कि कुछ तो सुंदर लड़कों के साथ अनुचित व्यवहार भी करते थे और उन्हें घर बुलाकर अश्लील हरकतें करते थे। इसका उल्लेख इस प्रकार है- ***''जो माँ-बहन की गालियाँ देते थे। सुन्दर लड़कों के गाल सहलाते थे और उन्हें अपने घर बुलाकर उनसे वाहियातपन करते थे।''[7]*** अध्यापक ही नहीं, गाँव के सवर्ण त्यागी भी यह बर्दाश्त नहीं कर पाते थे कि एक भंगी का बेटा पढ़ाई करे। वे हर तरह से उसे शिक्षा से दूर रखने की कोशिश करते थे। यह सामाजिक मानसिकता दर्शाती है कि दलित बच्चों के लिए शिक्षा केवल एक अधिकार नहीं, बल्कि एक संघर्ष था, जिसे उन्हें हर कदम पर लड़कर पाना पड़ता था। एक बार लेखक स्काउटिंग की वर्दी पर इस्तरी कराने के लिए गाँव के धोबी के पास गए। जैसे ही उन्होंने इस्त्री की बात कही, धोबी ने बिना किसी झिझक के उन्हें घर के बाहर ही रोकते हुए साफ शब्दों में कह दिया- ***"हम चूहड़े-चमारों के कपड़े न धोते हैं, न इस्तरी करते हैं।"[8]*** इस अपमानजनक उत्तर ने लेखक को यह महसूस करा दिया कि जाति के आधार पर समाज का भेदभाव केवल स्कूल या मंदिर तक सीमित नहीं, बल्कि रोजमर्रा के जीवन की छोटी-छोटी जरूरतों तक फैला हुआ है। एक साधारण-सी सेवा, जो दूसरों के लिए सामान्य थी, वह भी लेखक जैसे दलितों के लिए जातिगत अपमान का माध्यम बन जाती थी। यह घटना सामाजिक असमानता की गहराई और दलितों की उस स्थिति को उजागर करती है, जिसमें इंसानियत से पहले जाति देखी जाती थी। लेखक के पिता चाहते थे कि उनका बेटा किसी भी प्रकार पढ़-लिखकर आगे बढ़े। उनके लिए शिक्षा केवल नौकरी पाने का साधन नहीं थी, बल्कि जातिगत बेड़ियों को तोड़ने और सामाजिक सम्मान प्राप्त करने का माध्यम थी। वे जानते थे कि जाति व्यवस्था से मुक्ति का रास्ता शिक्षा से होकर ही जाता है। इसी विश्वास के चलते उन्होंने ओमप्रकाश की पढ़ाई को गंभीरता से लिया और हर कठिनाई के बावजूद उसमें कोई कमी नहीं आने दी। एक बार, जब हिरम सिंह की बारात में ओमप्रकाश ने सलाम की परंपरा पर प्रश्न उठाया और उसका विरोध किया, तो उनके पिता को यह अनुभव हुआ कि उनके संघर्षों का फल मिल गया है। गर्व से उन्होंने कहा- ***"मुंशी जी, बस तुझे स्कूल भेजना सफल हो गया है... म्हारी समझ में बी आ गिया है... ईब इस रीत कू तोड़ेंगे।"[9]*** और वाकई यह परंपरा तोड़ी भी गई। जब उनके अपने बेटे की शादी का समय आया, तो उन्होंने सख्ती से कहा - ***"मेरा बेटा सलाम करने नहीं जाएगा।"[10]*** यह सिर्फ एक सामाजिक रिवाज को नकारना नहीं था, बल्कि दलित समाज को आत्मसम्मान और अधिकार की चेतना से जोड़ने की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम था। उन्होंने यह साबित किया कि बदलाव की शुरुआत अपने घर से ही होती है, और संस्कारगत विद्रोह से ही सामाजिक न्याय की नींव रखी जा सकती है। ग्रामीण विद्यार्थी जीवन की कुछ घटनाएँ ऐसी भी थीं, जिन्होंने ओमप्रकाश वाल्मीकि के बालमन को गहराई तक झकझोर दिया। जातिगत पहचान के बोझ तले दबे हुए उनके बचपन ने ऐसे अनुभव झेले जो किसी भी संवेदनशील मनुष्य के लिए असहनीय हैं। एक बार पिता की अनुपस्थिति में उन्हें अपने चाचा के साथ एक मरे हुए बैल की खाल उतारने जाना पड़ा। यह कार्य वह करना नहीं चाहते थे, लेकिन सामाजिक दबाव और पारिवारिक विवशता के कारण उन्हें मजबूरन जाना पड़ा। काँपते हुए हाथों से उन्होंने छुरी उठाई और मरे जानवर की खाल उतारी। इस पीड़ादायक अनुभव को वह इस प्रकार व्यक्त करते हैं- ***"मरे हुए जानवर की खाल उतारने का दृश्य आज भी स्मृति में जीवित है। छुरी चलाते हुए मेरा शरीर काँप रहा था। खाल की गंध, खून और वह दृश्य मुझे भीतर तक झकझोर गया था।"[11]*** इसके बाद खाल की गठरी सिर पर उठाकर वे बस स्टैंड तक की भीड़ में से गुजरे। उनके लिए यह केवल एक गठरी नहीं थी, बल्कि जातिगत अपमान का प्रतीक बन गई थी। अगले दिन उन्होंने उसे चमड़ा बाजार में बेच भी दिया। इस घटना ने उन्हें यह समझा दिया कि दलित होने का अर्थ केवल निर्धनता नहीं, बल्कि निरंतर अपमान और सामाजिक बहिष्कार झेलना भी है। डॉ. अंबेडकर के जीवन-संघर्ष ने लेखक के अंतर्मन को गहराई तक झकझोर दिया। जब ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अंबेडकर के विचारों और उनके संघर्षों को पढ़ा, तो उनके भीतर एक नई चेतना का जन्म हुआ। अंबेडकर के लेखन और संघर्षों ने उन्हें पहली बार यह अनुभव कराया कि जाति-व्यवस्था के खिलाफ़ आवाज़ उठाना न केवल संभव है, बल्कि आवश्यक भी है। उनके शब्दों में- ***''डॉ. अम्बेडकर के जीवन-संघर्ष ने मुझे झकझोर दिया था।... मेरे भीतर एक प्रवाहमयी चेतना जाग्रत हो उठी थी। इन पुस्तकों ने मेरे गूंगेपन को शब्द दे दिए थे। व्यवस्था के प्रति विरोध की भावना मेरे मन में इन्हीं दिनों पुख्ता हुई थी।''[12]*** यह केवल एक वैचारिक परिवर्तन नहीं था, बल्कि लेखक की दलित पहचान को सामाजिक प्रतिरोध और आत्मसम्मान में रूपांतरित करने की शुरुआत थी। अंबेडकर के विचारों ने उन्हें उस घुटन भरे सामाजिक ढांचे को समझने की दृष्टि दी, जिसमें वे पल-बढ़ रहे थे। यही वह मोड़ था जब उनके भीतर एक क्रांतिकारी आत्मा का जन्म हुआ जो व्यवस्था के अन्याय के विरुद्ध न केवल स्वयं खड़ा होने को तैयार थी, बल्कि लेखनी के माध्यम से अन्य शोषितों के लिए भी आवाज़ बन सकी। अंबरनाथ में ओमप्रकाश वाल्मीकि का आगमन केवल एक स्थानांतरण नहीं था, बल्कि यह उनकी चेतना के विस्तार और दलित आंदोलन की जड़ों तक पहुँचने का नया अध्याय था। महाराष्ट्र की भूमि, जहाँ डॉ. अंबेडकर का विचार-बीज दलित चेतना के रूप में फल-फूल चुका था, वही भूमि ओमप्रकाश के भीतर भी नए बौद्धिक और सामाजिक संस्कार भरने लगी। यहाँ के समृद्ध पुस्तकालयों के माध्यम से उनका संपर्क विश्व साहित्य की विविध धाराओं से हुआ, जिससे उनका दृष्टिकोण व्यापक हुआ। नाट्यकला में गहरी रुचि रखते हुए उन्होंने छात्रावास में एक नाट्यदल का गठन भी किया। मंचन और अभ्यास के बीच, जब वे मराठी दलित साहित्य से परिचित हुए, तो यह संपर्क उनके लिए एक आत्ममंथन और नवजागरण की तरह था। जहाँ मुख्यधारा के साहित्य ने उन्हें देश-दुनिया की सामाजिक-राजनीतिक संरचनाओं से अवगत कराया, वहीं मराठी दलित साहित्य और उसके साहित्यकारों की लेखनी उनके अंतर्मन को झकझोर गई। यह साहित्य केवल पढ़ा नहीं जाता था, बल्कि उसके शब्द लेखक की रगों में चिनगारी-सा प्रवाहित होते थे, उनमें जोश, आत्मबल और विद्रोह का भाव भरते थे। उनके शब्दों में- ***''रगों में चिनगारी भर रहे थे। ऐसी अभिव्यक्ति जो रोमांचित कर नई ऊर्जा भर रही थी।... प्रशिक्षण की तकनीकी पढ़ाई के साथ साहित्यिक अभिरुचि का यह संसार हमारे भीतर लगातार नई चेतना भर रहा था।''[13]*** इसी कालखंड में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लेखन की शुरुआत की। दलित समाज की समस्याओं को स्वर देते हुए उनका पहला लेख 'नवभारत टाइम्स' (बंबई) में प्रकाशित हुआ, जिसने तत्काल चर्चाओं और

विवादों को जन्म दिया। यह लेखन महज़ शब्दों का संग्रह नहीं था, बल्कि यह दलित अस्मिता के संघर्ष का आरंभिक घोष था, जिसने उनके भीतर लेखक और सामाजिक कार्यकर्ता दोनों का बीजारोपण किया। इस प्रकार अंबरनाथ उनके लिए केवल एक स्थान नहीं, बल्कि एक विचार-भूमि बन गया, जहाँ से उन्होंने दलित साहित्य की चेतना और संघर्षशीलता को आत्मसात कर अपनी रचनात्मक यात्रा की शुरुआत की। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' केवल एक दलित लेखक के जीवन-संघर्ष की कथा नहीं है, बल्कि यह एक समूची सामाजिक संरचना की विवेचना भी है, जो जाति के नाम पर व्यक्ति की पहचान, अवसर, सम्मान और यहां तक कि प्रेम जैसे भावनात्मक अनुभवों को भी नियंत्रित करती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के जीवन का एक अत्यंत मार्मिक प्रसंग उनके प्रेम जीवन से संबंधित है, जो कॉलेज के दिनों में घटित हुआ। एक उच्च जाति की लड़की से उनका आत्मीय संबंध बनता है। दोनों के बीच संवाद और स्नेह का रिश्ता पनपता है, लेकिन जब लड़की को यह ज्ञात होता है कि ओमप्रकाश एक दलित समुदाय-वाल्मीकि से हैं, तो वह उनसे दूरी बना लेती है। सामाजिक मर्यादा और जातिगत पूर्वाग्रह उस स्त्री के व्यवहार को पूरी तरह बदल देते हैं। इस प्रसंग को वाल्मीकि कुछ इस तरह अभिव्यक्त करते हैं- ***"मैं उससे बहुत प्यार करता था... वह भी मुझसे बात करती थी, मेरे साथ समय बिताना अच्छा लगता था उसे... पर जब उसे पता चला कि मैं वाल्मीकि हूँ, तो उसका व्यवहार बदल गया... उसने मिलना बंद कर दिया... एक दिन उसने साफ कह दिया — 'तुम अच्छे हो, लेकिन तुम... तुम हरिजन हो ना?'... उस दिन मुझे पहली बार लगा कि प्रेम भी जाति देखता है।"***

"उसका चेहरा जैसे पत्थर हो गया था... मैं कुछ भी नहीं कह पाया... मेरे अंदर कुछ टूट गया था..."[14] यह उद्धरण केवल एक भावनात्मक आघात नहीं है, बल्कि भारतीय समाज में गहरे पैठी हुई जातिवादी मानसिकता का साक्ष्य भी है। यह अनुभव दिखाता है कि प्रेम जैसी आत्मीय और मानवीय भावना भी दलितों के लिए उपलब्ध नहीं होती यदि वह ऊँची जाति के घेरे में प्रवेश करती है। यह प्रसंग दलित साहित्य की उस परंपरा से जुड़ता है, जहाँ निजी अनुभव सार्वजनिक विमर्श का हिस्सा बनते हैं। "जूठन" में वर्णित यह प्रेम-प्रसंग दलित जीवन की उस अदृश्य पीड़ा का उद्घाटन करता है जिसे प्रायः मुख्यधारा साहित्य अनदेखा करता रहा है। इस प्रसंग से यह भी सिद्ध होता है कि जातिवादी व्यवस्था केवल सामाजिक-आर्थिक शोषण का नहीं, बल्कि आत्मा और मन के दमन का भी तंत्र है। दलितों के लिए सरनेम (जातिसूचक उपनाम) भी एक सामाजिक पहचान का ऐसा बोझ बन जाता है जो उन्हें लगातार अपमान, बहिष्कार और हीनता का अनुभव कराता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा *"जूठन"* में वर्णित प्रसंग, जिसमें उनकी भतीजी सीमा कॉलेज में उन्हें पहचानने से इंकार कर देती है, भारतीय समाज में जातिगत पहचान की गहराई और उसकी जकड़न को उजागर करता है। जब वाल्मीकि उससे पूछते हैं कि उसने क्यों नहीं बताया कि वे उसके चाचा हैं, तो वह कहती है- ***"सभी सहपाठिनों को पता चल जाता कि मैं 'वाल्मीकि' हूँ... आप फेस कर सकते हैं, मैं नहीं कर सकती..."***[15]। यह कथन सिर्फ एक युवती के डर को नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा और पारिवारिक निष्ठा के बीच के टकराव को दर्शाता है। सीमा, जो पढ़ी-लिखी और आत्मनिर्भर है, अपने चाचा की पहचान को इसलिए छिपाती है क्योंकि जाति उसके लिए एक बोझ है, एक कलंक जिसे वह अपने नए सामाजिक सांचे में नहीं ढाल सकती। यह प्रसंग इस विडंबना को सामने लाता है कि शिक्षा और आधुनिकता के बावजूद जातिवादी मानसिकता आज भी समाज के भीतर गहराई से मौजूद है, और दलितों को अपने ही संबंधों से कटकर जीने को मजबूर करती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि 'जूठन' भारतीय समाज की जातिवादी संरचना पर एक गहरी चोट है। यह पुस्तक केवल लेखक के व्यक्तिगत जीवन संघर्षों की कथा नहीं है, बल्कि समस्त दलित समुदाय के सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक और मानसिक उत्पीड़न का दस्तावेज़ है। इस आत्मकथा के माध्यम से ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दिखाया है कि एक दलित व्यक्ति को केवल रोटी-कपड़ा और मकान के लिए नहीं, बल्कि सम्मान, पहचान और मानवता की स्वीकृति के लिए भी लगातार संघर्ष करना पड़ता है। पुस्तक का समापन इस कड़वे सत्य के साथ होता है कि समाज की आधुनिकता और शिक्षा प्रणाली ने चाहे जितनी भी प्रगति की हो, लेकिन जाति आधारित भेदभाव और मानसिकता आज भी भारतीय चेतना में गहराई से पैठी हुई है। लेखक यह स्पष्ट करते हैं कि 'जूठन' केवल शारीरिक श्रम या बची-खुची खाने की वस्तु नहीं है, बल्कि यह उस पूरे सामाजिक बहिष्कार और मानसिक अपमान का प्रतीक है जो दलितों को पीढ़ी दर पीढ़ी झेलना पड़ा है। वाल्मीकि अपने जीवन के अनुभवों के माध्यम से यह भी बताते हैं कि शिक्षा, आत्मबल और लेखन ही वे रास्ते हैं जिनके सहारे दलित अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ सकते हैं। उन्होंने अपने सरनेम, अपनी जाति और अपने संघर्ष को कभी छिपाया नहीं, बल्कि उसे अपनी शक्ति बनाया। 'जूठन' का निष्कर्ष यही सिखाता है कि जब तक समाज में जातिगत भेदभाव मौजूद है, तब तक स्वतंत्रता और समानता केवल शब्द मात्र हैं। अंततः, 'जूठन' हमें संवेदनशील बनाता है, सवाल उठाना सिखाता है और यह प्रेरणा देता है कि हर दबी हुई आवाज को लेखनी के माध्यम से मुखर किया जा सकता है। यह न केवल दलित साहित्य की एक अमूल्य थाती है, बल्कि भारतीय समाज के आत्मावलोकन का अवसर भी।

****

सन्दर्भ सूची:

1. जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1997
2. जूठन, पृ. 159
3. वही, पृष्ठ-13
4. वही, पृ. 29
5. वही, पृ. 29
6. वही, पृष्ठ-35
7. वही, पृष्ठ-14
8. वही, पृ. 28
9. वही, पृष्ठ 44
10. वही, पृष्ठ 44
11. वही, पृ. 32
12. वही, पृ. 89
13. वही, पृ. 111
14. वही, पृष्ठ 119, राधाकृष्ण प्रकाशन
15. (वही, पृ. 153)